National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(66): 16-19
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

जय प्रकाश पाण्डेय
शोधार्थी , दर्शनशास्त्र विभाग,
डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

Correspondence:
जय प्रकाश पाण्डेय
शोधार्थी , दर्शनशास्त्र विभाग,
डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

वैदिक साहित्य में काल का निरूपण

जय प्रकाश पाण्डेय

सार: काल प्रकृति के निर्माण का मूलभूत आधार है। वस्तुतः काल आकाश के समान ब्रह्म है। काल पंच इन्द्रिय ज्ञान से अगम्य है तथा मन, बुद्धि, अहंकार से भी परे है। काल से पृथक रहकर किसी द्रव्य की सत्ता नहीं हो सकती। एक पूर्ण ब्रह्म निराकार, अनादि, अनंत, सर्वोच्च, विभु तथा सर्वशक्तिमान काल के रूप में प्रकट हो रहा है। काल के अंतराल को ही मापा जा सकता है। काल तत्त्व अपनी अजाशक्ति यानी त्रिगुणात्मिका प्रकृति का उपयोग करके गतिशील और स्थिर संसारों का निर्माण, संरक्षण, विनाश कर देता है। काल क्या है, काल का मूलस्वरूप क्या है, काल और क्षण क्या हैं, काल की गति कैसे संभव है- आदि प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं। महर्षि भृगु ने काल के अनेक तथ्यों का वर्णन किया है। उदहारण के लिए, सात केंद्र काल के सात चक्रों के वाहक हैं। काल की धुरी अमृत के समान है। काल भिन्न भिन्न लोकों की रचना करता है और सदैव गतिशील रहता है। जगत का प्रकाशक सूर्य काल से प्रेरित है। सभी जीवजन्तु काल पर आश्रित हैं। वेदांगों के अध्ययन के बिना वेद का अध्ययन पूर्ण नहीं होता। ज्योतिष समय को समझने की कला और विज्ञान है जिसे वेदपुरुष का नेत्र कहा गया है। वैदिक साहित्य में ज्योतिष का विशेष महत्व है। प्रस्तुत शोध पत्र में, वैदिक साहित्य में कालतत्त्व के निरूपण का अध्ययन किया गया है जिसका निष्कर्ष यह है कि कालज्ञान की उच्चतम सीमा परब्रह्म ही है।

कुंजी शब्दः काल, ब्रह्म, कालसूक्त, ज्योतिष दर्शनं

कहा गया है ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**। हम ब्रह्मज्ञान से संयुक्त हों **'सं ज्योतिषाभूम'** (यजुर्वेद 2.25)। उपनिषद ज्ञान प्राप्त करने के लिए सृष्टिज्ञान और देश-काल का ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक है। वेद का स्वरूप समझने के लिए सबसे पहले देश-काल का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।[1] वेद के छः अंग कहे गए हैं **'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषम् तथा। कल्पश्चेति षडंङ्गानि'**। किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है उसे अङ्ग कहते हैं **'अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि'**। वेदरूप पुरुष के दोनों पैर छंद हैं, दोनों हाथ कल्प हैं, आँखें ज्योतिष हैं, कान निरुक्त हैं, नाक शिक्षा है, मुख व्याकरण है। **छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनम् चक्षुनिरुक्तम श्रोत्रमुच्यते।। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतं। येषाम् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।** (पाणिनीय शिक्षा)। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' और यज्ञ का विधान विशिष्ट काल की अपेक्षा रखता है।

काल के विषय में जिज्ञासा की गई है, यथा - वह काल क्या है ? किसके वश में रहता है ? कौन इसके वश में नहीं हो सकता है ? (शिवपुराण, वायुसंहिता)। उपनिषद् में कथन है काल, स्वभाव, नियति, आकस्मिक घटना, पंच महाभूत, जीवात्मा - ये इस जगत के कारण भूत तत्त्व हैं या नहीं इस पर पुरुष को विचार करना चाहिए। **'कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या'**

(श्वेताश्वतरोपनिषत् 1.2)। जिस प्रकार वेद के पुरुषसूक्त में 'सहस्त्रशीषार्ः०' आदि मन्त्रों का, वास्तु में वास्तुपुरुष का व्याकरण में शब्दब्रह्म का, काव्यशास्त्र में काव्यपुरुष का निरूपण है, उसी प्रकार ज्योतिष में कालपुरुष की वैज्ञानिक परिकल्पना है।[2] जिस प्रकार विराट पुरुष है, वास्तुपुरुष है, अध्यात्म पुरुष है, वैसे ही वेदों में कालपुरुष भी है।

काल आकाश के समान ब्रह्म है । आकाश मे न गंध है, न रस है न रूप है न स्पर्श है, यह निराकार निर्विकार ब्रह्म का प्रतिरूप है। **'खं ब्रह्म'**। आकाश की उत्पत्ति विराट पुरुष की नाभि से हुई है (यजुः 31.13)। आकाश में केवल एक गुण शब्द है (मत्स्यपुराण 3.23)। परन्तु काल में तो शब्द भी नहीं है। काल पंच इन्द्रिय ज्ञान से अगम्य है । काल मन, बुद्धि, अहंकार से भी परे है तथा सत्त्व, रज, तम से भी काल परे है। काल से पृथक् रहकर किसी द्रव्य की सत्ता नहीं हो सकती। किसी भी व्यक्ति या वस्तु का उद्भव, उसकी स्थिति तथा उसका लय किसी देश और काल में ही संभव है। किसी पात्र के लिए देश और काल को कार्यसिद्धि एवं कामनासिद्धि का प्रधान उपाय बताया गया है। काल से ही सभीभूत पदार्थों की उत्पत्ति होती है तथा उसी में सब लय हो जाता है। **'कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः'** साधारणतया दृश्य प्रपंच में परिवर्तन के ज्ञान के हेतु को काल कहा जाता है। काल सर्वव्यापी, नित्य, अद्वितीय तथा विभु है। वस्तुतः काल एक ही है, पर भूत, वर्तमान, भविष्य काल के व्यावहारिक और औपाधिक भेद है।

किसी भी कार्य का उपादान उसका देश है। जैसे किसी घट का उद्भव-स्थिति-लय स्थानरूप उपादान मृत्तिका उसका देश है। किसी भी कार्य के उद्भव-स्थिति-लय का क्षण उसका काल है। कारण को कार्य की संरचना के अनुरूप और कार्य को उसकी स्थिति तथा कारणभावापत्ति के अनुरूप क्रियाशील करने वाला काल है। त्रिगुण की साम्यावस्था मूल प्रकृति में महासर्ग के प्रारंभ में क्षोभ उत्पन्न कर उसे सर्ग के अनुरूप करने वाला काल है। सर्वेश्वर की संहारिणी शक्ति और प्रकृति रूप माया तथा पुरुष का संयोग काल है। **कालो मायात्मसम्बन्धः** (सूत संहिता2.10)। कलनात्मिका शक्ति और उससे अवच्छिन्न काल है। अश्विनी (धरित्री, नक्षत्राणि), वरुण(जल), सूर्य (तेज), वायु, दिक् (आकाश), चन्द्रमा, वासुदेव, रूद्र, ब्रह्मा- ये नौ आधिदैविक धरातल पर काल विभाग करने वाली शक्तियाँ हैं।[3]

अथर्ववेद में कालसूक्त प्रसिद्ध है जिसके ऋषि भृगु हैं तथा देवता काल हैं। काल सूक्त का एक-एक मंत्र गूढ़ ज्ञान से परिपूर्ण है संक्षेप में काल सूक्त इस प्रकार है:

काल स्वरुप अश्व, जो विश्वरुपी रथ का वाहक है, वह सप्त किरणों एवं सहस्त्र नेत्रों वाला है। वह जरारहित और प्रचुर पराक्रम संपन्न है, समस्त लोक उसके चक्र हैं। उस अश्व या रथ पर बुद्धिमान(कवि) ही आरोहण करते हैं। (अथर्ववेद 19.53.1) वह काल सात चक्रों का वाहक है। उन चक्रों की सात नाभियाँ है। वह अक्ष अमृत अनश्वर है। वह प्रथम देव काल सभी भुवनों को प्रकट करता हुआ सतत् गतिशील है। (अथर्ववेद 19.53.2) वह **पूर्ण कुंभ** काल के ऊपर स्थापित है। संत-ज्ञानी उस काल को विभिन्न रूपों में देखते हैं । वह काल इन दृश्यमान प्राणियों के सामने प्रकट होकर इन्हें अपने में समाहित कर लेता है । मनीषीगण उस काल को विकारों से रहित आकाश के सामान निर्लेप बताते हैं। (अथर्ववेद 19.53.3) वह काल समस्त भुवनों का पोषण करने वाला तथा सभी में श्रेष्ठ रीति से संव्याप्त है। वही भूतकाल में इन प्राणियों का पिता, भविष्य में इनका पुत्र हो जाता है। इस काल से उत्तम कोई तेज नहीं है। (अथर्ववेद 19.53.4) काल ने ही इस दिव्यलोक को उत्पन्न किया है, काल ने पथिवी को उत्पन्न किया है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी अविनाशी काल के आश्रित रहते हैं। (अथर्ववेद 19.53.5) काल ने ही भूति (सष्टि) का सृजन किया है। काल से ही सूर्य तपते हैं। काल के आश्रित ही समस्त भूत हैं। काल के ही आश्रित नेत्र (ज्योतिष) विविध पदार्थों को देखते हैं। (अथर्ववेद 19.53.6) काल में मन, काल में प्राण, काल में ही नाम समाहित हैं। काल की अनुकूलता से समस्त प्रजा आनंदित होते हैं। (अथर्ववेद 19.53.7) काल तप है, काल ज्येष्ठ है, काल में ब्रह्म समाहित है। काल ही सबका ईश्वर है। काल ही सबका पिता है तथा समस्त प्रजा का पालक है। (अथर्ववेद 19.53.8) यह संसार काल द्वारा प्रेरित, उसी से उत्पन्न तथा उसी के आश्रय में प्रतिष्ठित है। काल ही ब्रह्म होकर परमेष्ठी (प्रजापति) को धारण करता है। (अथर्ववेद 19.53.9) प्रारंभ में काल ने प्रजापति का सृजन किया, तत्पश्चात् प्रजा का सृजन । काल स्वयंभू है। कश्यप काल से जन्मे हैं। तप काल से उत्पन्न है। (अथर्ववेद 19.53.10) काल से आपः उत्पन्न हैं। काल से ही ब्रह्म, तप तथा दिशायें उत्पन्न हैं। काल में ही सूर्य उदित होकर काल में ही प्रविष्ट हो जाता है। (अथर्ववेद 19.54.1) काल की प्रेरणा से वायु प्रवाहित है। काल से ही यह पृथिवी गतिशील है। काल से ही द्यौः आश्रित है। (अथर्ववेद 19.54.2) काल के द्वारा पूर्व समय में भूत और भविष्य को उत्पन्न किया गया है। काल से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ और यजुर्वेद के मंत्र प्रकट हुए हैं। (अथर्ववेद 19.54.3) काल ने ही क्षयरहित यज्ञ भाग को देवत्व संवर्धक शक्तियों के निमित्त प्रेरित किया है। काल से ही गन्धर्व अप्सरसः का प्रादुर्भाव हुआ है। समस्त लोक काल में ही प्रतिष्ठित हैं। (अथर्ववेद 19.54.4) अङ्गिरा और अथर्वा काल में ही अधिष्ठित हैं। इहलोक, परलोक और पुण्यलोकों तथा पवित्र मर्यादाओं को जीतकर वह काल देव ब्रह्म ज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। (अथर्ववेद 19.54.5)[4]

अक्षर से काल की उत्पत्ति होती है और काल से वह व्यापक कहलाता है। **'अक्षरात्सञ्जायते कालः कालाद्व्यापक उच्यते'** (अथर्वशिर उपनिषद् 6.)। ब्रह्म के काल तथा अकाल दो रूप हैं। जो आदित्य के पूर्व है, वह अकाल अकल है और जो आदित्य के पश्चात् है वह काल सकल है। जो संवत्सर है वह सकल का रूप **है। द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्च। अथ यः प्रागादित्यासोऽकालोऽकलः। अथ य आदित्यात्पश्चात स कालः**

सकलः । सकलस्य वा एतद्रूपं यत्संवत्सरः । (मैत्रायण्युपनिषत् 6.15) काल संज्ञक आदित्य की उपासना करे। कालसंज्ञमादित्यमुपा-सीतादित्यो ब्रह्मा (मैत्रायण्युपनिषत् 6.16)। सूर्यो योनिरू कालस्य (मैत्रायण्युपनिषत् 6.14)

श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं - गणना करने वालों में मैं काल **हूँ। 'कालः कलयतामहम्** (श्रीमद्भगवद्गीता 10.30) अपने अधीन करने वालों में मैं काल हूँ। महाप्रलय में केवल 'अक्षयकाल' रूप एक परमात्मा ही रह जाते हैं। काल का भी काल परमेश्वर अक्षीण काल है। **'अहमेवाक्षयः कालः'** (श्रीमद्भगवद्गीता 10.33)। कलनात्मिका शक्ति तथा उससे अवच्छिन्न चैतन्य काल है।[5]

कठ उपनिषद में यम कहते हैं, सभी वेद जिस ब्राह्मी स्थिति का बारम्बार उल्लेख करते हैं, सभी तपः साधनाएं जिस स्थिति का अनुभव कराती हैं, जिसे प्राप्त करने की अभिलाषा से साधकगण ब्रह्मचर्यादि नियमो पर चलते हैं उस पद का वर्णन में संक्षेप में करता हूँ- ॐ ही वह परम पद है। **सर्वे वेदा यात्पद्मामनन्ति तपेसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पद् संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।** (कठोपनिषद् 1.2.15) यह अक्षर ही तो ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है इसलिये इस अक्षर को जानकर जो जिसको चाहता है उसको वही अभीष्ट प्राप्त होता है। एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । **एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्** (कठोपनिषद् 1.2.16)। जो कर्मफलदाता सबको जीवन प्रदान करनेवाले भूत, वर्तमान और भविष्य का शासन करने वाले इस परमात्मा को अपने समीप जानता है वह किसी की निंदा नहीं करता। **य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् । ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्** (कठोपनिषद् 2.1.5)। अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा तीन-तीन काल रूप है, ॐकार द्वादश कलाओं से युक्त है। धारणा, ध्यान, समाधि से इसे जानना चाहिए। **कालत्रयेऽपियत्रेमा मात्रा नूनं प्रतिष्ठिताः। एष ओङ्कार आख्यातो धारणाभिर्निबोधत॥** (नादबिन्दूपनिषत् 8)। काल की गति कालातीत तत्त्व से है। अनन्त तत्त्व एक विशेष नियम से बंधा है, वह नियम काल है। हम काल को तर्क से समझ सकते है पर तर्क भी काल को पूर्ण रूप से समझने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि काल भी उसी कालातीत परमात्मतत्त्व की सत्ता से चलता है (कठ० 1.2.8)।

क्या काल त्रिगुणातीत है? त्रिगुणातीत तत्त्व तो आत्मा या परमात्मा है। काल आत्मा के समान अजन्मा है, काल आत्मा के समान अमर है । काल आत्मा के समान अजर है, सर्वव्यापक है, असङ्ग है, सम है, नित्य है, अपरिच्छिन्न है, असीम है, अनंत है। काल आत्मा के समान अज्ञेय, अनादि और अप्रमेय है। आत्मा स्वयंप्रकाश है, काल आत्मचेतना द्वारा प्रकाशित होता है। आत्मा सर्वशक्तिमान है, यह पिंड तथा ब्रह्माण्ड को शक्ति देता है। काल स्वयं आत्मशक्ति द्वारा गतिशील है, आत्मा द्वारा प्रमाणित है। आत्मा काल को जानता है, काल आत्मा को नहीं जानता। आत्मा काल का भी काल है। काल का स्वरुप निराकार और अव्यक्त है। काल का प्रयोजन अवधि संख्या है। त्रिगुणमयी पदार्थों का रूपांतर ही काल का आकार (स्वरुप) है स्वयं काल निर्विशेष (निराकार) है।[6]

अगर हम काल संकर्षण के योगिक विज्ञान को देखें, तो क्रम काल का धर्म है। काल-राज्य में क्रम का अवलंबन करके ही चलना पड़ता है। काल-संकर्षण का चरम लक्ष्य है- क्रम को अतिक्रम करके अक्रम स्वरूप में आत्मप्रकाश करना। काल संकर्षण के फल से क्रमशः काल से क्षण की प्राप्ति होती है। चैतन्य की अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, काल की मात्रा उतनी क्षीण होती जाती है। काल में क्रम है, पर क्षण में क्रम नहीं है। जब आवरण क्रमशून्य भाव में चला जाता है तब एकमात्र क्षण ही वहाँ रह जाता है । इसी कारण कहा जाता है कि एक ही क्षण में समग्र विश्व का परिणाम संघटित हो जाता है। काल से क्षण में प्रविष्ट होने के उपाय का अवलंबन कर पाने पर इच्छामात्र से अविलम्ब क्षण में प्रवेश हो जाता है। काल के साथ देश का ज्ञान नित्य संश्लिष्ट है।[7]

उपनिषद में कालातीत आत्म तत्त्व की भी जिज्ञासा की गयी है - जो कार्य कारणरूप जगत् एवं भूत, भविष्यत् (एवं वर्तमानकाल) से भी भिन्न है उस आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में बताएँ। **अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यति तद्वद** (कठोपनिषद्1.2.14)। परमपुरुष कालरूप, प्राणरूप, मृत्युरुप, शर्वरूप, महेश्वररूप, भवरूप, रुद्ररूप, उग्ररूप, ससुर (सुरयुक्त) तथा सासुर (असुरयुक्त) भी है। **कालः प्राणश्च भगवान्मृत्युः शर्वो महेश्वरः। उग्रो भवश्च रुद्रश्च ससुरः सासुरस्तथा॥** (मन्त्रिकोपनिषत् 12) काल के परम प्रशासक (ईश्वर) महाकाल ही अक्षर रहते हैं। सापेक्ष काल (समय) को संख्या द्वारा सीमित किया जा सकता है किन्तु निरपेक्ष महाकाल को सीमित नहीं किया जा सकता। महाकाल पुरुष अनादि है, व्यापक है।

कितने ही बुद्धिमान लोग स्वभाव को जगत का कारण बताते हैं, उसी प्रकार दूसरे लोग काल को जगत का कारण बताते हैं। वास्तव में ये लोग मोहग्रस्त हैं। वास्तव में तो परमदेव परमेश्वर की समस्त लोक में फैली हुई महिमा है जिसके द्वारा यह ब्रह्मचक्र घुमाया जाता है। **स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः। देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्॥** (श्वेताश्वतरोपनिषत् 6.1)। जिस परमेश्वर से यह संपूर्ण जगत सदा व्याप्त है जो ज्ञान स्वरुप परमेश्वर निश्चय ही काल का काल है, सर्वगुणसम्पन्न सबको जानने वाला है, उससे ही शासित हुआ यह जगतरूप कर्म चल रहा है - पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश भी शासित हैं। **येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः। तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथिव्यप्तेजोनिलखानि चिन्त्यम्॥** (श्वेताश्वतरोपनिषत् 6.

2)। परमात्मा ने ही उस जड़तत्त्वों की रचना रूप कर्म को करके, निरीक्षण कर, फिर चेतन तत्त्व का जड़तत्त्व से संयोग कराके, एक से, दो से, तीन से, आठ से और काल से आत्म सम्बन्धी सूक्ष्म गुणों के साथ, योग करके, जीव का सम्बन्ध करके इस जगत की रचना की है। **तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्यतावेन समेत्य योगम्। एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः॥** (श्वेताश्वतरोपनिषत् 6.3) जो सृष्टि बन चुकी है, जो बनने वाली है यह सब विराट पुरुष ही है। **पुरुषऽएवेद सर्वम् यदभूतं यच्च भाव्यं** (यजुर्वेद 31.2)। दिन-रात जिसकी भुजाएँ हैं, नक्षत्र जिसके रूप हैं। **अहोरात्रे पार्शवे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्** (यजुर्वेद 31.22)। काल ज्ञान का विज्ञान ज्योतिष है। ज्योतिष का मूलाधार वेद है। ज्योतिष कर्म सिद्धांत का प्रमाण है। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन से सत्य विषय में ज्ञान दृढ हो जाता है **'ज्योतिषशास्त्राध्ययनेन सत्यविषये ज्ञानं दृढं भवति'।** अथर्ववेद में नक्षत्रों की संख्या 28 बतायी गयी है। अट्ठाइस नक्षत्र मुझे वह सब प्रदान करें जो कल्याणकारी और सुखदायी हैं, मुझे प्राप्ति सामर्थ्य और रक्षा सामर्थ्य प्रदान करें, अहोरात्रों को नमस्कार है। **अष्टाविंशानी शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे । योगं प्र पद्ये क्षेमं च प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु** (अथर्ववेद 19.8.2)। ऋग्वेद में सूर्य, चन्द्र और अग्नि की ज्योतिष्मती किरणों को 'केश' कहा गया है। केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिंरुच्यते (ऋग्वेदः 10.136.1)। स्यात् गीता के केशव शब्द का अर्थ प्रकाशस्वरूप ब्रह्म है।[8]

यदि हम ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता पर प्रकाश डालें तो मानव के समक्ष जहाँ दर्शन नैराश्यवाद की धूमिल रेखा अंकित करता है, वहाँ ज्योतिष कर्त्तव्य के क्षेत्र में लाकर उपस्थित करता है। भविष्य को अवगत कर अपने कर्तव्यों द्वारा उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए ज्योतिष प्रेरणा करता है। पारमार्थिक दृष्टि से देखें, तो भारतीय ज्योतिष का रहस्य परम ब्रह्म को प्राप्त करना है। ज्योतिष की समस्त क्रियाएँ बिंदु-शून्य के आधार पर चलती हैं; जो कि निर्गुण निराकार ब्रह्म का प्रतीक है। बिंदु गतिशील होकर रेखारूप में परिवर्तित होता है। जिस प्रकार ब्रह्म से 'एकोऽहं बहु स्याम' कामना रूप उपाधि के कारण माया का आविर्भाव हुआ है, जिस प्रकार बिंदु ब्रह्म का प्रतीक है, रेखा माया का प्रतीक है-इन दोनों के संयोग से ही क्षेत्रात्मक, बीजात्मक, अंकात्मक गणित का निर्माण हुआ है, वही गणित भारतीय ज्योतिष का प्राण है। ज्योतिष का ज्ञान आगम ज्ञान होते हुए भी अतीन्द्रिय ज्ञान के तुल्य सत्य के निकट पहुँचाने वाला है।[9]

चारों वेदों के पृथक्पृथक् ज्योतिषशास्त्र थे। तीन वेदों के ज्योतिषशास्त्र प्राप्त होते हैं-ऋग्वेद का ज्योतिष शास्त्र **आर्चज्योतिषम्** जिसमें 36 पद्य हैं। यजुर्वेद का ज्योतिष शास्त्र **याजुषज्योतिषम्** है जिसमें 39 पद्य हैं । अथर्ववेद का ज्योतिष शास्त्र **आथर्वणज्योतिषम्** है जिसमें 162 पद्य हैं । सामवेद का ज्योतिषशास्त्र अनुपलब्ध है।

अतः काल तत्त्व का अनुसन्धान करते करते हम अंततः सच्चिदानंद सर्वेश्वर पर ही पहुचते हैं । सर्वेश्वर मूल देश है तथा उनका ईक्षण रूप संकल्प मूल काल है। प्रत्येक वस्तु देश और काल से सीमित होती है किन्तु कालातीत महाकाल से शक्तिरूप में अनंत काल उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। अतः जगत बनाने वाला निमित्त तथा बनने वाला उपादान स्वयं सर्वेश्वर है। सर्व देश-काल तथा वस्तु का मूल अव्याकृत तथा परम मूल परब्रह्म सिद्ध है। उसी से ज्योतिष आदि सर्व शास्त्रों की प्रवृति तथा उसी में सर्व शास्त्रों का पर्यवसान है।

सन्दर्भ सूची:

1. कल्याण उपनिषद् अंक, गीताप्रेस, संवत् 2067; पृष्ठ 57.
2. स्वामी श्रीस्वरूपानंद सरस्वती, ज्योतिष के बहुविध रूप एवं उनकी उपादेयता, कल्याण ज्योतिषतत्त्वांक, गीताप्रेस, 2014; पृष्ठ सं 138.
3. स्वामी श्री निश्चलानंद सरस्वती, ज्योतिष दर्शन, कल्याण ज्योतिषतत्त्वांक गीताप्रेस, 2014; पृष्ठ सं 146-147.
4. श्रीराम शर्मा आचार्य, अथर्ववेद संहिता, युग निर्माण योजना, 2002; 49-51.
5. स्वामी श्री निश्चलानंद सरस्वती, ज्योतिष दर्शन, कल्याण ज्योतिषतत्त्वांक, गीताप्रेस, 2014; पृष्ठ सं 145.
6. श्रीजयराजी वशिष्ठ, काल-विज्ञान, कल्याण पुनर्लोक और पुनर्जन्मांक, गीताप्रेस, 1969; पृष्ठ सं 248-256.
7. श्रीगोपिनाथजी कविराज, काल-विवेचन, कल्याण पुनर्लोक और पुनर्जन्मांक, गीताप्रेस, 1969; पृष्ठ सं 235-239.
8. आर्य भूषण शुक्ल, घटना-समय पद्धति, अव्यक्त प्रकाशन 2018; पृष्ठ सं 149.
9. स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती, ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता कल्याण ज्योतिषतत्त्वांक,गीताप्रेस, 2014; पृष्ठ सं 149.